



2026:AHC-LKO:9729

एएफआर

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ पीठ

भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 528 के तहत आवेदन

संख्या - 1980 वर्ष 2025

कमलेश अग्निहोत्री उर्फ कमल और 2 अन्य

.....आवेदक(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य, सचिव, गृह विभाग, लखनऊ और अन्य के माध्यम से

.....विपक्षी पक्ष(गण)

आवेदक (गण) के अधिवक्ता : शैलेन्द्र कुमार सिंह, मोहित मिश्रा, सुनील कुमार

विपक्षी पक्ष (गण) के अधिवक्ता : शासकीय अधिवक्ता, श्रीनिवास बाजपेयी, विनय
प्रकाश तिवारी, शंकर लाल पांडे

सुरक्षित: दिनांक 04.02.2026

प्रदत्त: दिनांक: 09.02.2026

न्यायालय कक्ष सं. - 12

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

आदेश

1. आवेदकों के अधिवक्ता श्री मोहित मिश्रा, राज्य की ओर से पेश हुए शासकीय अधिवक्ता श्री वी.के. सिंह जिनकी सहायता अपर शासकीय अधिवक्ता-1 श्री भानु प्रताप सिंह ने की और प्रतिवादी संख्या 2 के अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा - जिनके साथ अधिवक्ता(गण) श्री श्रीनिवास बाजपेयी और श्री अभय शुक्ला की भी की बातें सुनी गईं।
2. यह आवेदन मुकदमा अपराध संख्या 392/2025 में, भारतीय न्याय संहिता की धाराओं 308(2), 351(2), 352 के तहत थाना सुशांत गोल्फ सिटी, जिला लखनऊ में दाखिल आरोप पत्र संख्या 01/2025 दिनांक 25.07.2025 को साथ ही, वाद संख्या 115214/2025 (राज्य बनाम कमल उर्फ कमलेश अग्निहोत्री और अन्य) में समन आदेश और पूरी आपराधिक कार्यवाही को भी रद्द करने की मांग के साथ दायर किया गया है।
3. संक्षेप में तथ्य यह हैं कि आवेदक और विपक्षी संख्या 2 'सेलिब्रिटी ग्रीन्स' नाम की सोसाइटी के निवासी हैं। इस सोसाइटी में बड़ी संख्या में सदस्य रहते हैं जो अपार्टमेंट के मालिक हैं। सोसाइटी का गठन निवासियों ने किया था और इसे विधिवत पंजीकृत भी कराया गया था। आवेदक संख्या 1 सोसाइटी के विधिवत चुने गए सचिव हैं, और आवेदक संख्या 2 और 3 क्रमशः सोसाइटी के अध्यक्ष और अवधायक हैं। यह कहा गया है कि सोसाइटी का गठन बिल्डर से अनापत्ति प्रमाण पत्र लेने के बाद किया गया था और इसे उ. प्र. अपार्टमेंट अधिनियम की धारा 14 के तहत बनाया गया है; यह अधिनियम और उप-नियमों के प्रावधानों के अनुसार काम करती है। यह भी कहा गया है कि सोसाइटी की आम सभा नियमित बैठकें करती है और उप-नियमों, नियमों आदि के अनुसार कार्रवाई की जाती है।
4. बताया गया है कि 24.11.2024 को हुई बोर्ड बैठक में बेतरतीब पार्किंग के मुद्दे पर चर्चा की गई और कुछ दिशा-निर्देश जारी की गई। साथ ही, निवासियों को अपनी गाड़ियां पार्क

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



करने के लिए उनकी पसंद का एक स्लॉट दिया गया और उन्हें उसी तय पार्किंग जगह पर गाड़ी पार्क करने की सलाह दी गई। यह कल्याणकारी कदम कॉलोनी के अंदर यातायात की आवाजाही में रुकावट से बचने के लिए उठाया गया था। यह भी तय किया गया कि दिशा-निर्देश का पालन न करने पर, पहली बार में निवासियों को सलाह दी जाएगी; दोबारा ऐसा होने पर गाड़ियों को ताला लगा दिया जाएगा और चेतावनी देकर की ताला खोला जाएगा; और तीसरी बार ऐसा होने पर बोर्ड बैठक के अनुसार 500 रुपये का जुर्माना लगाने की कार्रवाई की जाएगी।

5. बताया गया है कि विपक्षी संख्या 2 अपनी गाड़ी गलत तरीके से पार्क कर रहा था, जिसका विरोध किया गया; इसी वजह से उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 392/2025 (अनुलग्नक 1) दर्ज कराई। इसमें आरोप लगाया गया कि सूचनाकर्ता बी-टेक स्नातक है और एक उद्यमी व समाज-सेवक है; यह भी बताया गया कि वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर एस एस) के भाऊराव देवरस ट्रस्ट का ट्रस्टी है और 2022 से उस अपार्टमेंट में रह रहा है। कहा गया कि आरोपी निवासी लोगों से पैसे वसूल रहे थे और 1 मई को 500 रुपये का जुर्माना लगाने को लेकर सूचनाकर्ता को धमकी दी गई थी। यह भी बताया गया कि आरोपियों ने एक गैंग बनाकर अलग-अलग लोगों से पैसे वसूले और पैसे न देने पर निवासियों को परेशान किया। सूचनाकर्ता के अनुसार, इन वसूलियों के लिए कोई मंजूरी नहीं थी और कोई रसीद भी नहीं दी जाती थी; इसलिए भारतीय दंड संहिता की धाराओं 308(2), 351(2) और 352 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का अनुरोध किया गया।

6. विवेचना अधिकारी श्री शिव कांत तिवारी ने विवेचना की। विवेचना के दौरान, विवेचना अधिकारी ने सूचना देने वाले का बयान दर्ज किया और घटनास्थल का नक्शा भी तैयार किया। उन्होंने विपक्षी संख्या 2 द्वारा दिए गए सबूत भी दर्ज किए, जो अनुलग्नक-8 में शामिल हैं। इकट्ठा किए गए सबूत केवल सूचना देने वाले के बयान के रूप में थे, जिसमें उन्होंने कहा था कि निवासी कल्याण संघ (संक्षेप में 'आर.डब्ल्यू.ए.') बिना किसी अधिकार वाली एक ऐसी संस्था थी जिसका कोई प्रमुख नहीं था, और उसे सोसाइटी के प्रबंधन आदि के संबंध में कोई भी निर्णय लेने का अधिकार नहीं था। ये बातें अनुलग्नक-8 के तौर पर अभिलेख में मौजूद हैं। धनराशि का सही इस्तेमाल न करने के आरोप भी लगाए गए थे।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



7. सूचना देने वाले का बयान भी अनुलग्नक-6 के तौर पर अभिलेख में है, जिसमें कहा गया है कि आर.डब्ल्यू.ए. द्वारा वाहनों की गलत पार्किंग (जिसमें सूचना देने वाले का वाहन भी शामिल था) के लिए धमकियां दी जा रही थीं।
8. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 180 के तहत आवेदकों के बयान भी दर्ज किए गए। इन बयानों में कहा गया कि सूचनाकर्ता अपनी गाड़ी गलत तरीके से पार्क करने का आदी था, जिसका निवासियों ने विरोध किया था। एक व्हाट्सएप मैसेज भी भेजा गया था जिसमें गाड़ी हटाने को कहा गया था और यह भी बताया गया था कि सलाह के बावजूद गाड़ी गलत तरीके से पार्क की जा रही थी। साथ ही, यह चेतावनी भी दी गई थी कि अगर मालिक ने ऐसा करना जारी रखा, तो गाड़ी को ताला लगाने के लिए कदम उठाए जाएंगे। ये बयान अभिलेख पर अनुलग्नक 9, 10 और 11 के तौर पर मौजूद हैं।
9. इसी जानकारी के आधार पर आरोप पत्र दाखिल किया गया जो अभिलेख पर है। इसमें तीनों आरोपियों के भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 180 के तहत दिए गए बयानों का जिक्र था। अचानक यह निष्कर्ष निकाला गया कि आवेदक संख्या 1 और 2 ने कार पर जैमर लगवाए थे और ताला हटाने के लिए 500 रुपये की मांग की थी। इसी जानकारी के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 308(2), 351(3) और 352 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया।
10. इसी आरोप पत्र के आधार पर, लखनऊ के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मामले का संज्ञान लिया और वाद संख्या 115214/2025 में आवेदकों को समन जारी किया। समन जारी करने का आदेश अभिलेख पर अनुलग्नक 13 के तौर पर मौजूद है।
11. समन जारी करने के आदेश को देखने पर ऐसा नहीं लगता कि इसमें किसी तरह का सोच-विचार किया गया है, सिवाय इसके कि आरोप पत्र दाखिल किया गया था, दस्तावेजों की विवेचना की गई थी, आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद थी और समन जारी कर दिए गए थे।
12. इसी बात को चुनौती देते हुए यह आवेदन दायर किया गया है।



13. आवेदनकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि अगर सभी आरोपों को पूरी तरह सच भी मान लिया जाए, तो भी वे भारतीय न्याय संहिता की धारा 308(2), 351(2), 352 के तहत अपराध नहीं बनते हैं। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि यह कार्रवाई सिर्फ सूचनाकर्ता के कहने पर आर.डब्ल्यू.ए. के चुने हुए सदस्यों को परेशान करने और आवेदनकर्ताओं को डराने-धमकाने के उद्देश्य से शुरू की गई है, जो संगठन में सूचनाकर्ता की सदस्यता के विवरण से भी साफ़ पता चलता है। यह भी तर्क दिया गया है कि पूरी कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण है। यह तर्क दिया गया है कि आरोप पत्र बिना ठीक से विवेचना किए दायर किया गया है, सोसाइटी के किसी अन्य सदस्य का बयान दर्ज नहीं किया गया, आर.डब्ल्यू.ए. के प्रस्ताव को देखा तक नहीं गया, और कोई सबूत दर्ज नहीं किया गया कि कोई रकम वसूली गई थी।

14. यह ध्यान देना भी ज़रूरी है कि उसी सूचनाकर्ता की पत्नी ने उ. प्र. अपार्टमेंट अधिनियम के तहत अपर सचिव के पास 07.06.2025 को एक शिकायत दर्ज कराई थी, जिसे सोसाइटी को उच्च न्यायालय के रिट याचिका संख्या 33826 वर्ष 2012 (मैसर्स डिजाइनार्च इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम उपाध्यक्ष, गाजियाबाद विकास प्राधिकरण एवं अन्य) के निर्णय के अनुसार काम करने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया था। सूचनाकर्ता द्वारा दायर की गई उक्त शिकायत और पारित आदेश अनुलग्नक - 14 और 15 में शामिल हैं।

15. इन बातों को देखते हुए, यह तर्क दिया गया है कि कार्रवाई को जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। यह भी कहा गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट को चुनौती देते हुए आपराधिक विविध ज़मानत आवेदन संख्या 5311 वर्ष 2025 में दायर की गई थी, हालाँकि, आरोप पत्र दायर होने के बाद वह बेअसर हो गई है। यह भी बताया गया है कि उक्त मामले में आवेदनकर्ताओं को अंतरिम सुरक्षा भी दी गई थी।

16. प्रतिवादी संख्या 2 के अधिवक्ता ने एक जवाब-हलफनामा दाखिल किया है। इसमें कहा गया है कि बयान देने वाला व्यक्ति सोसाइटी में शांति से रह रहा था, जब तक कि "उस पर भ्रष्ट शासन जैसा प्रबंधन थोपा नहीं गया" और सोसाइटी के बाकी सदस्य अब निष्क्रिय हो चुके



हैं। इसमें कहा गया है कि कई अन्य गाड़ियों को भी लॉक लगाकर रोक दिया गया था और पैसे देने पर ही उन्हें छोड़ा गया। आगे यह भी तर्क दिया गया कि पार्किंग की जगह का आवंटन मनमाने ढंग से किया गया था और निवासियों को परेशान किया जा रहा था। यह भी कहा गया है कि बयान देने वाला व्यक्ति और उसका परिवार खुद को छोटा और तुच्छ महसूस कर रहा था। इसका सटीक बयान नीचे दिया गया है:

“4. ...बयान देने वाले और उनके परिवार को खुद को बहुत छोटा और बेबस महसूस हो रहा था। बहुत ही गलत और आक्रामक आदेशों की वजह से निवासियों में डर और नाराज़गी फैल रही थी। जबरन वसूली आम बात हो गई थी। मुश्किलों को सहने की हिम्मत तब जवाब दे गई, जब ज़रूरी काम से जाते समय बयान देने वाले ने देखा कि उनकी कार का टायर जाम कर दिया गया था। बयान देने वाले और सोसाइटी के दूसरे सदस्यों ने माफिया की तरह काम कर रही तथाकथित आर.डब्लू.ए. से ज़ोरदार गुज़ारिश की कि वे कानून अपने हाथ में न लें, लेकिन उनकी बात का कोई असर नहीं हुआ और उन्हें मानसिक तनाव झेलना पड़ा। इसलिए, जुल्म से निपटने का कोई और रास्ता न मिलने पर, बयान देने वाले ने आखिरी उपाय के तौर पर याचिकाकर्ताओं के खिलाफ़ यह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने का निर्णय किया।”

जवाब-हलफनामे में अन्य आरोप भी लगाए गए हैं। जवाब-हलफनामे में आर.डब्लू.ए. को प्रोजेक्ट सौंपने के तरीके का भी ज़िक्र किया गया है।

17. विपक्षी संख्या 2 के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि ये आरोप भारतीय न्याय संहिता की धारा 308(2), 351(2) और 352 के तहत अपराध की श्रेणी में आते हैं, इसलिए इस आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए। यह भी तर्क दिया गया कि सूचनाकर्ता को अपनी सामाजिक स्थिति बताने का पूरा अधिकार है, जिसमें आरएसएस द्वारा चलाए जा रहे ट्रस्ट की सदस्यता भी शामिल है।



18. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने भी जवाब-हलफनामा दाखिल किया है, जिसमें प्रथम सूचना रिपोर्ट में कही गई बातों को दोहराया गया है और विवेचना के तरीके को सही ठहराया गया है। साथ ही, यह अनुरोध किया गया है कि इस आवेदन को खारिज कर दिया जाए क्योंकि विवेचना निष्पक्ष थी और आरोप पत्र से संज्ञेय अपराध का पता चलता है।

19. आवेदक के अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा **संजीव उर्फ कल्लू सेठिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में (**आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 18458/2022**, जिसका निर्णय **17.10.2022** को हुआ था) की गई टिप्पणियों का हवाला दिया है। उन्होंने निष्पक्ष विवेचना के महत्व को उजागर करने वाले पैरा 29 से 36 पर विशेष ज़ोर दिया है। ये पैरा इस प्रकार हैं:

“29. उ. प्र. पुलिस विनियमन 107 और 108 में उस प्रक्रिया का विवरण दिया गया है जिसका पालन विवेचना अधिकारी को करना होता है, जो इस प्रकार है:

107. विवेचना अधिकारी को खुद को सिर्फ बयान दर्ज करने वाला क्लर्क नहीं समझना चाहिए। उसका काम है चीज़ों को देखना और उनसे नतीजा निकालना। हर मामले में, उसे अपराध की जगह और आम हालात के बारे में अपनी माहिर समझ का इस्तेमाल करके गवाहों के सबूतों की विवेचना करनी चाहिए। जिन मामलों में अपराधी का पता न हो, वहां उसे यह तय करना चाहिए कि उन्हें किस दिशा में ढूंढा जाए। उसे पुलिस की जानकारी वाले स्थानीय अपराधियों के काम करने के तरीकों का अध्ययन करना चाहिए ताकि उनके काम करने के अंदाज़ को पहचाना जा सके। उसे गवाहों के शक और शिकायतों को तब तक नहीं मानना चाहिए जब वे तथ्यों से निकले साफ़ नतीजों के उलट हों। उसे याद रखना चाहिए कि उसका काम सच का पता लगाना है, न कि सिर्फ सजा दिलवाना। उसे किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में तथ्यों के बारे में कोई राय जल्दबाज़ी में



नहीं बनानी चाहिए। हालांकि, अगर उसे लगता है कि आरोपी दोषी है, तो उसे बचाव पक्ष के सबूत खोजने के लिए अलग से कोशिश करने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन उसे हमेशा आरोपी को अपने सामने बचाव के सबूत पेश करने का मौका देना चाहिए और अगर ऐसे सबूत पेश किए जाएं, तो उन पर ध्यान से विचार करना चाहिए। सेंधमारी के मामलों की विवेचना इस विषय पर दिए गए खास आदेशों के अनुसार की जानी चाहिए।

108. विवेचना अधिकारी का पहला कदम यह होना चाहिए कि वह "दंड प्रक्रिया संहिता" की धारा 172 के तहत तय वाद डायरी में उस समय और जगह को नोट करे जहां उसे वह जानकारी मिली जिस पर वह कार्रवाई कर रहा है, और डायरी में 'प्रथम सूचना रिपोर्ट' की एक कॉपी भी दर्ज करे। विवेचना शुरू करते समय, उसे डायरी में वह समय और जगह नोट करनी चाहिए जहां से उसने विवेचना शुरू की है। इसके बाद उसे कथित अपराध की जगह का मुआयना करना चाहिए और सूचनाकर्ता तथा किसी भी ऐसे व्यक्ति से पूछताछ करनी चाहिए जो मामले के हालात पर रोशनी डाल सके। विवेचना के शुरुआती दौर में, उसे 'ग्राम अपराध नोट-बुक' देखनी चाहिए ताकि वहां दर्ज किसी ऐसी बात का पता चल सके जिसका इस मामले से कोई संबंध हो सकता है।

30. ऊपर बताए गए नियमों को देखने से पता चलता है कि विवेचना अधिकारी के लिए, विवेचना करते समय आरोपी और सूचनाकर्ता दोनों बराबर होते हैं। उसे दोनों पक्षों का पक्ष सुनना होता है और उसके बाद, आरोपी पर लगाए गए आरोपों की विवेचना के बारे में किसी निष्पक्ष नतीजे पर पहुंचना होता है। उसे सिर्फ यह साबित करने की ज़रूरत नहीं है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप सही हैं और उसे आरोपी को फंसाने के लिए सबूत इकट्ठा करने की ज़रूरत नहीं है, जिससे



उसका आरोपी होना सही साबित हो सके। ऐसा तब किया जाता था जब देश औपनिवेशिक शासन के अधीन था, लेकिन ऐसा लगता है कि स्वतंत्रताके बाद भी पुलिस की विवेचना का तरीका वैसा ही है। इसका उद्देश्य सिर्फ आरोपी को फंसाने को सही ठहराना होता है। पुलिस के विवेचना अधिकारी शायद ही कभी आरोपी पक्ष के बयान दर्ज करते हैं।

31. निष्पक्ष विवेचना क्या होती है, इस पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई फैसलों में विचार किया है, जिनका जिक्र नीचे किया गया है:

1) बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 Supp (1) एससीसी 222, पृष्ठ 258

पर:

48. इस नज़रिए से, पुलिस की विवेचना के दौरान न्यायपालिका की भूमिका सहयोगी होनी चाहिए और विवेचना करने वाले को सच्चाई का पता लगाने के लिए—यानी अपराध होने का सबूत पाने के लिए—घटनाओं की कड़ी को जोड़ने वाले सबूत इकट्ठा करने की पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। अक्सर इसमें गवाह या आरोपी की व्यक्तिगत स्वतंत्रताका मामला शामिल होता है और असुविधा से बचा नहीं जा सकता। विवेचना अधिकारी कानून का पालन करते हुए और व्यक्तिगत स्वतंत्रताका ध्यान रखते हुए सच्चाई का पता लगाने के लिए गहराई से विवेचना करेगा। साथ ही, एक ज़रूरी प्रक्रिया के तौर पर आपराधिक कानून को लागू करना भी उसकी ज़िम्मेदारी है। कोई भी आपराधिक न्याय प्रणाली सम्मान के लायक नहीं है अगर वह अज्ञानता से चलती हो। संदिग्ध को अपराध से जोड़ने के लिए सबूत गढ़ना कभी भी उसका काम नहीं होता। पुलिस की विश्वसनीयता ही सबसे बड़ी प्रत्याभूत है। जनता का भरोसा जीतने के लिए विवेचना



करने वाले की विवेचना-पड़ताल की काबिलियत और ईमानदारी की अच्छी छवि जरूरी है। जनता का पूरा समर्थन भी जरूरी है।

2) बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य, (2010) 12 एससीसी 254: (2011) 1 एससीसी (आपराधिक) 336, पेज 268 पर:

32. किसी आपराधिक मामले की विवेचना में ऐसी कोई आपत्तिजनक बात या कमी नहीं होनी चाहिए, जिससे आरोपी को यह शिकायत करने का जायज़ कारण मिल जाए कि विवेचना निष्पक्ष नहीं थी और किसी गलत उद्देश्य से की गई थी। विवेचना अधिकारी का यह भी कर्तव्य है कि वह विवेचना करते समय किसी भी आरोपी को परेशान न करे या उसके साथ कोई गलत हरकत न करे। विवेचना अधिकारी को निष्पक्ष और सतर्क रहना चाहिए ताकि सबूतों को मनगढ़ंत तरीके से तैयार करने की कोई गुंजाइश न रहे; उसका निष्पक्ष व्यवहार सबूतों की असलियत पर उठने वाले किसी भी शक को दूर करने वाला होना चाहिए। विवेचना अधिकारी का काम "अभियोजन पक्ष के मामले को ऐसे सबूतों से मज़बूत करना नहीं है जिनसे न्यायालय दोषी ठहरा सके, बल्कि असली और बिना मिलावट के सच को सामने लाना है"। (देखें आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866; जमुना चौधरी और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 1974 एससी 1822; और महमूद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1976 एससी 69)।

3) विनय त्यागी बनाम इरशाद अली, (2013) 5 एससीसी 762, पेज 792 पर:

48. आपराधिक कानून में 'निष्पक्ष और उचित विवेचना' शब्द का असल उद्देश्य या महत्व क्या है? इसके दोहरे उद्देश्य हैं। पहला, विवेचना निष्पक्ष, ईमानदार, न्यायपूर्ण और कानून के अनुसार होनी



चाहिए। दूसरा, निष्पक्ष विवेचना पर पूरा जोर इस बात पर होना चाहिए कि मामले की सच्चाई सक्षम क्षेत्राधिकार वाली न्यायालय के सामने आए। एक बार जब निष्पक्ष विवेचना के ये दोनों पैमाने पूरे हो जाते हैं, तो न्यायालय के लिए विवेचना में दखल देने, उसे रद्द करने या किसी दूसरी एजेंसी को सौंपने की ज़रूरत बहुत कम रह जाती है। कानून के अनुसार निष्पक्ष और विवेचना-पड़ताल के तरीकों से सच्चाई सामने लाने से असल में अनुचित, दागदार विवेचना या झूठे आरोपों के मामलों का आधार ही खत्म हो जाएगा। इसलिए, न्यायालय के लिए ऐसी विवेचना के भविष्य के बारे में कोई खास आदेश देना ज़रूरी हो जाता है, जो उसकी राय में अनुचित, दागदार और विवेचना के स्थापित सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाली हो।

4) अमितभाई अनिलचंद्र शाह बनाम सीबीआई, (2013) 6 एससीसी 348 : (2014) 1 एससीसी (आपराधिक) 309, पेज 383 पर :

58.9. आपराधिक न्याय प्रणाली दोतरफा प्रक्रिया है, जिसमें संविधान के तहत आरोपी के अधिकारों की रक्षा करना उतना ही ज़रूरी है जितना पीड़ित को न्याय दिलाना। यह निश्चित रूप से एक मुश्किल काम है, लेकिन न्यायालय की एक ज़रूरी ज़िम्मेदारी भी है कि वह दोनों के अधिकारों की रक्षा करे। इसलिए, न्यायालय को संविधान के तहत आरोपी के मौलिक अधिकारों और संज्ञेय अपराध की विवेचना करने की पुलिस की व्यापक शक्तियों के बीच सही संतुलन बनाना होगा। इसके अनुसार, विवेचना की व्यापक शक्तियों का मतलब यह नहीं है कि किसी नागरिक को एक ही घटना के संबंध में बार-बार पुलिस विवेचना का सामना करना पड़े, भले ही उस घटना से एक या अधिक संज्ञेय अपराध बनते हों। नतीजतन, हमारी राय में न्याय के



हित में दूसरी प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए यह एक उपयुक्त मामला है।

58.10. आपराधिक न्याय प्रणाली में विवेचना अधिकारी मुख्य भूमिका निभाते हैं। उनकी विश्वसनीय विवेचना ही मामले के पीड़ितों को पूरा न्याय दिलाने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम है। इसलिए, उन पर दोहरी ज़िम्मेदारियाँ होती हैं: मामले की पूरी तरह से विवेचना करना और फिर उसे साबित करने के लिए विश्वसनीय सबूत इकट्ठा करना।

5) मनोहर लाल शर्मा बनाम प्रधान सचिव, (2014) 2 एससीसी 532 : (2014) 4 एससीसी (आपराधिक) 1, पेज 553 पर:

26. पुलिस की ज़िम्मेदारियों में से एक नागरिकों के जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति की रक्षा करना है। अपराधों की विवेचना करना पुलिस के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। विवेचना का अंतिम उद्देश्य सच्चाई का पता लगाना और अपराधी को सज़ा दिलाना है।

27. दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "संहिता") की धारा 2(h) में विवेचना को इस तरह परिभाषित किया गया है कि इसमें संहिता के तहत सबूत इकट्ठा करने की वे सभी कार्यवाही शामिल हैं जो पुलिस अधिकारी या मजिस्ट्रेट द्वारा इस काम के लिए अधिकृत किसी व्यक्ति (मजिस्ट्रेट के अलावा) द्वारा की जाती हैं।

28. एच.एन. ऋषभ मामले में, इस न्यायालय ने बताया कि विवेचना में आम तौर पर निम्नलिखित चरण शामिल होते हैं : (एआईआर पेज 201, पैरा 5)

(1) घटना स्थल पर जाना;

(2) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का पता लगाना;



(3) संदिग्ध अपराधी का पता लगाना और उसे गिरफ्तार करना;

(4) अपराध किए जाने से संबंधित सबूत इकट्ठा करना, जिसमें ये शामिल हो सकते हैं:

(क) विभिन्न व्यक्तियों (आरोपी सहित) से पूछताछ करना और अगर अधिकारी को सही लगे, तो उनके बयान को लिखित रूप में दर्ज करना;

(ख) ऐसी जगहों की तलाशी लेना और चीजों को ज़ब्त करना, जिन्हें विवेचना के लिए और परीक्षण के दौरान पेश करने के लिए ज़रूरी समझा जाए;

(5) इकट्ठा की गई सामग्री के आधार पर यह राय बनाना कि क्या आरोपी को परीक्षण के लिए मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने का मामला बनता है; अगर ऐसा है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत ज़रूरी चार्ज-शीट दाखिल करने के लिए ज़रूरी कदम उठाना।

6) दीनूभाई बोग्हाभाई सोलंकी बनाम गुजरात राज्य, (2014) 4 एससीसी 626 : (2014) 2 एससीसी (आपराधिक) 384, पेज 643 पर:

48. निस्संदेह, आपराधिक न्याय प्रणाली का मूल उद्देश्य सच्चाई तक पहुँचना है। इसका मूल सिद्धांत यह है कि जहाँ दोषी को सजा से बचना नहीं चाहिए; वहीं किसी निर्दोष व्यक्ति को तब तक सजा नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि कानून के अनुसार संदिग्ध/आरोपी का अपराध साबित न हो जाए। सभी संदिग्धों/आरोपियों को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किए गए परीक्षण में उचित संदेह से परे उनका अपराध साबित न हो जाए। आरोपी की सुरक्षा के लिए निष्पक्ष, बिना भेदभाव वाली और पारदर्शी विवेचना अत्यंत आवश्यक है। विवेचना के तरीके



से असंतुष्ट होकर, पीड़ित के पिता ने निष्पक्ष विवेचना की मांग करते हुए याचिका दायर की।

7) राजीव सिंह बनाम बिहार राज्य, (2015) 16 एससीसी 369, पेज 397 पर:

79. राज्य की कानून लागू करने वाली संस्था के एक अधिकार-प्राप्त तंत्र के रूप में, विवेचना एजेंसी को नागरिकों की सुरक्षा और हिफाजत सुनिश्चित करने की अहम जिम्मेदारी सौंपी गई है, और इस प्रक्रिया में उसे मानवाधिकारों के रक्षक के तौर पर काम करना होता है। अपने पास मौजूद अधिकारों और संसाधनों के साथ, पुलिस बल लोकतांत्रिक व्यवस्था के संवैधानिक ढांचे में एक व्यवस्थित समाज को बनाए रखने के लिए एक अहम कड़ी है। आमतौर पर, मुसीबत में फँसे या जिनके कानूनी अधिकारों का उल्लंघन हुआ है, वे न्याय पाने के लिए सबसे पहले पुलिस के पास ही जाते हैं। इस तरह, पुलिस बल को एक अत्यंत महत्वपूर्ण कर्तव्य सौंपा गया है; सच्चाई का पता लगाने और अपराध होने की स्थिति में अपराधी को कानून की प्रक्रिया के दायरे में लाने के अपने कामकाज में उनका निष्पक्ष, समर्पित और दृढ़ होना अनिवार्य है। इसलिए, किसी अपराध की विवेचना के मामले में, विवेचना एजेंसी को संविधान के अनुसार अपराधी और पीड़ित के परस्पर विरोधी अधिकारों के बीच एक नाजुक संतुलन बनाए रखना होता है, लेकिन किसी भी हाल में उसे अपने नजरिए और कामकाज में लापरवाह, असावधान या अविवेकपूर्ण नहीं होना चाहिए। मौजूदा हालात में बढ़ते अपराधों और कानून के उल्लंघन के खतरनाक चलन के खिलाफ, पुलिस बल की समर्पित और दृढ़ कार्रवाई ही एक भरोसा दिलाती है।

80. चूंकि आपराधिक अपराध समाज के खिलाफ एक अपराध है, इसलिए विवेचना एजेंसी का यह पवित्र, कानूनी और सामाजिक दायित्व



है कि वह सच्चाई का पता लगाने और दोषी को सजा दिलाने के लिए अपने सभी संसाधनों, अनुभव और विशेषज्ञता का पूरा इस्तेमाल करे। इस मामले की विवेचना में साफ तौर पर दिखी कमियां यह दिखाती हैं कि संबंधित अधिकारी इस बेहद ज़रूरी काम को पूरा करने में बुरी तरह नाकाम रहे हैं।

81. इस न्यायालय ने, अन्य मामलों के अलावा, अमितभाई अनिलचंद्र शाह बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो और अन्य (2013) 6 एससीसी 348 मामले में, निष्पक्ष, गहन और सार्थक विवेचना की ज़रूरत पर जोर देते हुए कहा था कि आपराधिक न्याय प्रणाली में विवेचना अधिकारी मुख्य भूमिका निभाते हैं और विश्वसनीय विवेचना मामले के पीड़ितों को पूरा न्याय दिलाने की दिशा में एक अहम कदम है। यह तय किया गया था कि आपराधिक न्याय देना एक दोतरफा प्रक्रिया है, जिसमें संविधान के तहत आरोपी के पक्के अधिकारों की रक्षा करना उतना ही ज़रूरी है जितना कि पीड़ित को न्याय दिलाना। यह माना गया कि दोनों के अधिकारों की रक्षा और सुरक्षा करना न्यायालय की एक बड़ी और ज़रूरी जिम्मेदारी है। इस बात पर जोर दिया गया कि न्यायालय को संविधान के तहत आरोपी के मौलिक अधिकारों और संज्ञेय अपराध की विवेचना करने की पुलिस की व्यापक शक्तियों के बीच सही संतुलन बनाना होगा। हम इस मामले में विवेचना एजेंसी की समझ से परे गलतियों को देखकर हैरान हैं और हम उम्मीद करते हैं कि आपराधिक अपराधों की निष्पक्ष, सक्षम और प्रभावी विवेचना सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार अधिकारी न्यायालय की इस गंभीर चिंता पर ध्यान देंगे और ज़रूरी सुधारात्मक कदम उठाएंगे, ताकि भविष्य में इन बातों को दोहराने की ज़रूरत न पड़े और दंडात्मक परिणाम न भुगतने पड़ें।



8) सुरेश चंद्र जाना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2017) 16 एससीसी 466, पेज 480 पर:

34. आखिरी पहलू खराब विवेचना और अभियोजन से जुड़ा है। अगर लापरवाही से की गई विवेचना, या सतही विवेचना के कारण हुई चूक या कमियों को ठीक से नहीं सुधारा जाता है, तो कानून लागू करने वाली एजेंसी में लोगों का भरोसा और विश्वास डगमगा जाएगा। इसलिए पुलिस को बहुत ज्यादा सावधानी, गंभीरता और तेज़ी दिखानी चाहिए। [राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1998) 4 एससीसी 517 का संदर्भ लें]।

35. किसी भी सभ्य आपराधिक न्याय प्रणाली के लिए निष्पक्ष सुनवाई की बुनियादी ज़रूरत बहुत अहम है। यह ऐसे समाज के लिए ज़रूरी है जो मानवाधिकारों को मानता हो और आज़ादी, कानून का शासन, लोकतंत्र और खुलेपन जैसे मूल्यों पर आधारित हो। सुनवाई का पूरा उद्देश्य दोषी को सज़ा दिलाना और साथ ही बेगुनाह को बचाना है। इस प्रक्रिया में न्यायालयों को हमेशा सच की तलाश करनी चाहिए और हर मामले के तथ्यों और हालात के आधार पर किसी नतीजे पर पहुँचना चाहिए, बिना न्याय के असल उद्देश्य को नुकसान पहुँचाए।

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई मामलों में यह माना है कि निष्पक्ष विवेचना, जो चार्ज-शीट दाखिल करने से पहले होती है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार है। इसलिए, यह निष्पक्ष, पारदर्शी और न्यायपूर्ण होनी चाहिए। दागदार और पक्षपाती विवेचना के आधार पर दाखिल की गई चार्ज-शीट असल में बिना किसी विवेचना के तैयार की जाती है, और इसलिए, ऐसी विवेचना के आधार पर दाखिल चार्ज-शीट को कानूनी और कानून के अनुसार नहीं माना जा सकता। ऐसी कुछ टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



1) निर्मल सिंह कहलों बनाम पंजाब राज्य, (2009) 1 एससीसी 441 : (2009) 1 एससीसी (आपराधिक) 523, पेज 455 पर:

28. आरोपी निष्पक्ष विवेचना का हकदार है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत आरोपी के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए निष्पक्ष विवेचना और निष्पक्ष सुनवाई ज़रूरी है। लेकिन राज्य की एक बड़ी ज़िम्मेदारी भी है - कानून-व्यवस्था बनाए रखना, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना और समाज में शांति और सद्भाव बनाए रखना। इसलिए, अपराध का शिकार व्यक्ति भी निष्पक्ष विवेचना का उतना ही हकदार है। जब राज्य के किसी पूर्व मंत्री के खिलाफ गंभीर आरोप लगाए जाते हैं, तो (बदले की भावना से प्रेरित राजनीतिक प्रतिशोध के मामलों को छोड़कर) मामले की विवेचना का काम किसी एजेंसी को सौंपना राज्य का काम है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए, राज्य किसी भी समय विवेचना किसी दूसरी एजेंसी को सौंपने पर विचार कर सकता है, जिसमें ऐसी एजेंसी भी शामिल है जिसे ऐसे मामलों में महारत हासिल हो।

2) बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य, (2010) 12 एससीसी 254 : (2011) 1 एससीसी (आपराधिक) 336, पेज 272 पर :

45. भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रत्याभूत संवैधानिक अधिकारों में न केवल निष्पक्ष सुनवाई, बल्कि निष्पक्ष विवेचना भी शामिल है। इसलिए, विवेचना निष्पक्ष, पारदर्शी और न्यायपूर्ण होनी चाहिए क्योंकि यह कानून के शासन की न्यूनतम आवश्यकता है। विवेचना एजेंसी को दूषित और पक्षपाती तरीके से विवेचना करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। जहां न्यायालय के हस्तक्षेप न करने से अंततः न्याय विफल हो सकता है, वहां न्यायालय को हस्तक्षेप करना चाहिए। ऐसी



स्थिति में, न्याय के हित में यह हो सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा चुनी गई कोई स्वतंत्र एजेंसी नए सिरे से विवेचना करे।

3) अज़ीज़ा बेगम बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 3 एससीसी 126, पृष्ठ 128 पर:

12. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम पाते हैं कि इस देश के प्रत्येक नागरिक को अपनी शिकायत की उचित विवेचना कराने का अधिकार है। हमारे कानूनों के तहत प्रदान किया गया विवेचना का कानूनी ढांचा चुनिंदा रूप से केवल कुछ लोगों को उपलब्ध नहीं कराया जा सकता और दूसरों को इससे वंचित नहीं किया जा सकता। यह कानूनों के समान संरक्षण का प्रश्न है और संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत प्रत्याभूत के अंतर्गत आता है।

13. यह मुद्दा न्याय तक समान पहुंच सुनिश्चित करने जैसा है। एक निष्पक्ष और उचित विवेचना हमेशा न्याय के उद्देश्यों और कानून के शासन को स्थापित करने तथा कानून-व्यवस्था में उचित संतुलन बनाए रखने के लिए सहायक होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में ये बहुत महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिनका न्यायालयों को ध्यान रखना चाहिए।

33. इस देश को मौजूदा पुलिस व्यवस्था ब्रिटिश सरकार से विरासत में मिली है। ब्रिटिश शासन का मुख्य उद्देश्य पुलिस बल का इस्तेमाल करके यथास्थिति बनाए रखना था, ताकि अपनी सत्ता को दी जाने वाली किसी भी चुनौती को सख्ती से दबाया जा सके। ब्रिटिश सरकार के निर्देशों के कारण पुलिस को दमनकारी कदम उठाने पड़ते थे। इसी के अनुसार, सरकार के निर्देशों और देश पर शासन करने के उनके उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विवेचना की जाती थी। उसी हिसाब से चार्ज-शीट दाखिल की जाती थीं, जो निष्पक्ष और स्वतंत्र विवेचना का नतीजा नहीं होती थीं। देश के लोगों के मौलिक अधिकार मौजूद नहीं थे और आपराधिक प्रक्रिया संहिता को इस तरह से बनाया गया था जो स्वतंत्रतासे पहले देश के लोगों के अधिकारों के अनुरूप नहीं था।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



इस संहिता में कहीं भी यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि किसी कथित अपराध की विवेचना करते समय विवेचना अधिकारी को दोनों पक्षों, यानी आरोपी और सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता, के गवाहों के बयान दर्ज करने ही होंगे।

34. स्वतंत्रताके बाद, भारत अंग्रेजों के पुलिस राज से एक लोक हितकारी राज्य बन गया। स्वतंत्रताके बाद जो कानून बनाए गए, वे देश के लोगों के मौलिक अधिकारों के अनुरूप थे। लोक हितकारी राज्य में, बिगड़ती कानून-व्यवस्था, सांप्रदायिक दंगों, राजनीतिक उथल-पुथल, छात्रों के असंतोष, आतंकवादी गतिविधियों और सफेद कॉलर अपराधों में बढ़ोतरी जैसी स्थितियों के कारण पुलिस की भूमिका और मुश्किल हो गई। इन नई चुनौतियों के अलावा, पुलिस बल पर भी काफी दबाव और तनाव बढ़ गया। कानून-व्यवस्था बनाए रखने और वीआईपी इयूटी जैसे कामों में लंबे समय तक इयूटी करने के कारण पुलिस के पास मामलों की ठीक से विवेचना करने के लिए कम समय बचा। काम के दबाव में, पुलिस ने उन्हें सौंपी गई अपराधों की विवेचना को बिना सोचे-समझे यांत्रिक तरीके से करना शुरू कर दिया। विवेचना अधिकारी पर समाज के प्रभावशाली लोगों का दबाव होता है कि वे उनके कहने के अनुसार रिपोर्ट दें। विवेचना में पैसे का असर साफ दिखता है और यह किसी अपराध या मामले की निष्पक्ष विवेचना में एक बहुत बड़ी बाधा है। कई लॉ कमीशन रिपोर्टों में यह सुझाव दिया गया था कि पुलिस के विवेचना विभाग को कानून-व्यवस्था विभाग से अलग कर दिया जाना चाहिए, लेकिन ऐसा अभी तक नहीं हो पाया है। विवेचना विभाग को कानून-व्यवस्था विभाग से अलग करने के अपने जोखिम भी हैं। अगर उन्हें अलग कर दिया जाता है, तो कानून-व्यवस्था की स्थिति को नियंत्रित करना मुश्किल हो सकता है; शरारती तत्वों और अपराधियों को यह पता चल जाएगा कि कानून-व्यवस्था संभालने वाली पुलिस अलग है और मामले की विवेचना करने वाली पुलिस अलग, जिससे वे कानून-व्यवस्था को चुनौती दे सकते हैं। स्थानीय स्तर पर पुलिस के विभागों को अलग करने में यह एक व्यावहारिक कमी है। विवेचना अधिकारी पर वरिष्ठ अधिकारियों का भी दबाव होता है, जो आरोपी को फंसाने के लिए सबूत इकट्ठा करने और उसे दोषी ठहराने की



स्थापित प्रक्रिया से किसी भी तरह के बदलाव को पसंद नहीं करते। उन्हें आरोपी के खिलाफ विवेचना रिपोर्ट जमा करके उसे दोषी ठहराना सुरक्षित लगता है, सिवाय कुछ मामलों के जहाँ वे या उनके राजनीतिक संरक्षक कुछ और चाहते हों।

35. इसलिए, यह साफ़ है कि न्यायालय को चार्ज-शीट दाखिल होने से पहले और बाद में आरोपी की जमानत अर्जियों पर विचार करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। जैसा कि ऊपर बताया गया है, निष्पक्ष और स्वतंत्र विवेचना के बाद चार्ज-शीट दाखिल करने में विवेचना अधिकारी के सामने कई रुकावटें आती हैं।

36. स्वतंत्रताका अधिकार बहुत अहम है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत इसकी प्रत्याभूत दी गई है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत, सभी को - चाहे वह सूचना देने वाला/सूचनाकर्ता हो या आरोपी - कानून का समान संरक्षण मिलता है। विवेचना या परीक्षण के दौरान, "आरोपी के निर्दोष होने की धारणा" बनी रहती है और यह तब तक रहती है जब तक कि उसे आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 255 (समन वाद), धारा 248 (वारंट वाद) या धारा 335 (सेशन वाद) के तहत दोषी नहीं ठहराया जाता। दोषी ठहराए जाने पर ही, निर्दोष होने की धारणा की जगह दोषी ठहराने का निर्णय ले लेता है।

20. आवेदक के अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय का भी हवाला दिया है जो **'माणिक तनेजा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य'** मामले में 20.01.2015 को **आपराधिक अपील संख्या 141/2015** में पारित में सुनाया गया था। उन्होंने पैराग्राफ 13 से 16 पर जोर देते हुए तर्क दिया कि भारतीय न्याय संहिता की धारा 351(3) के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, क्योंकि आपराधिक धमकी का कोई आरोप नहीं लगाया गया था। वे पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

"13. भारतीय दंड संहिता की धारा 506 में आपराधिक धमकी के अपराध के लिए सज़ा बताई गई है। भारतीय दंड संहिता की धारा 503 में 'आपराधिक धमकी' की परिभाषा इस प्रकार है:-

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



“503. आपराधिक अभिवासा- जो कोई किसी अन्य व्यक्ति के शरीर, ख्याति या सम्पत्ति को या किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर या ख्याति को, जिससे कि वह व्यक्ति हितबद्ध हो कोई क्षति करने की धमकी उस अन्य व्यक्ति को इस आशय से देता है कि उसे संत्रास कारित किया जाए, या उससे ऐसी धमकी के निष्पादन का परिवर्जन करने के साधन स्वरूप कोई ऐसा कार्य कराया जाए, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से आबद्ध न हो, या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप कराया जाए, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से हकदार हो, वह आपराधिक अभिवासा करता है ।

स्पष्टीकरण - किसी ऐसे मृत व्यक्ति की ख्याति को क्षति करने की धमकी जिससे वह व्यक्ति, जिसे धमकी दी गई है, हितबद्ध हो, इस धारा के अन्तर्गत आता है ।”

14. "आपराधिक धमकी" की परिभाषा को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें किसी दूसरे व्यक्ति को धमकाने, या धमकाए गए व्यक्ति के शरीर, प्रतिष्ठा या संपत्ति को नुकसान पहुँचाने, या ऐसे व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने में जिसमें धमकाए गए व्यक्ति की रुचि हो, का काम शामिल होना चाहिए। साथ ही, धमकी का उद्देश्य धमकाए गए व्यक्ति को डराना या घबराहट पैदा करना होना चाहिए, या ऐसा कोई काम करने के लिए मजबूर करना होना चाहिए जिसे करने के लिए वह कानूनी रूप से बाध्य नहीं है, या ऐसा कोई काम न करने के लिए मजबूर करना होना चाहिए जिसे करने का उसे कानूनी अधिकार है।

15. इस मामले में, आरोप यह है कि अपीलकर्ताओं ने सूचनाकर्ता के साथ दुर्यवहार किया, दूसरे प्रतिवादी को उसके सार्वजनिक कर्तव्यों का पालन करने से रोका और दूसरे प्रतिवादी की ईमानदारी पर सवाल उठाए। यह तय करने के लिए कि क्या कही गई बात "आपराधिक धमकी" के दायरे में आती है, आरोपी के इरादे पर विचार



करना ज़रूरी है। धमकी का उद्देश्य सूचनाकर्ता को डराना या घबराहट पैदा करना होना चाहिए ताकि वह व्यक्ति कोई काम करे या न करे। बिना डराने या घबराहट पैदा करने के इरादे के केवल शब्द कहना इस धारा को लागू करने के लिए काफी नहीं होगा। लेकिन यह दिखाने के लिए सबूत अभिलेख पर रखे जाने चाहिए कि इरादा सूचनाकर्ता को डराना या घबराहट पैदा करना था। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से ऐसा लगता है कि अपीलकर्ताओं का इरादा दूसरे प्रतिवादी के मन में डर या घबराहट पैदा करके उसके कर्तव्य के पालन में बाधा डालना नहीं था। जहाँ तक फेसबुक पर की गई टिप्पणियों की बात है, तो ऐसा लगता है कि यह जनता की मदद के लिए बना एक सार्वजनिक मंच है और अपीलकर्ताओं द्वारा फेसबुक पर टिप्पणी करने का काम भारतीय दंड संहिता की धारा 503 के तहत आपराधिक धमकी के दायरे में नहीं आ सकता है।

16. बेशक, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए न्यायालय को विवेचना में हस्तक्षेप करने में बेहद सतर्क रहना चाहिए या एक आपराधिक मामले की सुनवाई और विवेचना को रोकना नहीं चाहिए, सिवाय इसके जब यह किसी भी प्रकार के संदेह से परे आश्वस्त हो जाता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट ऐसा नहीं करती है अपराध के घटित होने और अपराधी के बने रहने का खुलासा करें अभियोजन को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग माना जाएगा। जैसा कि उल्लेख किया गया है इससे पहले यातायात पुलिस ने फेसबुक पर जो पेज बनाया था जनता को अपनी शिकायतें रखने के लिए मंच। हमारे सुविचारित दृष्टिकोण में, हो सकता है कि अपीलकर्ताओं ने सद्भावना के तहत टिप्पणी ऑनलाइन पोस्ट की हो विश्वास है कि यह अनुमेय सीमा के भीतर था। जैसा कि पहले भी चर्चा की गई है प्रथम सूचना रिपोर्ट में निर्विवाद आरोपों को देखते हुए, हमारे विचार से, इनमें से कोई भी नहीं कथित अपराधों की सामग्री संतुष्ट हैं। हम इस विचार के हैं मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए इसकी अनुमति



देना अन्याय होगा अपीलकर्ताओं के खिलाफ न्यायालय की प्रक्रिया जारी रहेगी और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किये जाने योग्य है।”

21. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता निर्णय पर भरोसा करते हैं **बेरी मनोज बनाम आंध्र राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की प्रदेश एवं अन्य. 2026 की 20.01.2026 को आपराधिक अपील संख्या 362 में पारित किया गया** पैरा 5, 6 और 7 पर जोर देते हुए तर्क दें कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 352 के तहत भी मामला नहीं बनता है। उक्त पैराग्राफ पढ़ा गया नीचे के रूप में है:-

“5. पक्षों की ओर से पेश हुए अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और न्यायालय में उठाए गए विरोधी तर्कों पर ध्यान से विचार करने के बाद, हम शुरुआती चरण में ही यह देखते हैं कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज पीड़िता के बयान में - चाहे जो भी कारण रहा हो - अपीलकर्ता द्वारा दी गई किसी धमकी का जिक्र तक नहीं है, सिवाय इसके कि वह अपीलकर्ता के घर गई थी। हालाँकि, सात दिन बाद - यानी काफी समय बीत जाने के बाद - उसने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत अपना बयान दिया और अपनी बात में सुधार किया, जैसा कि उसके बयान से ही साफ़ है, जो इस प्रकार है:

“चंदू तेज के पिता, चाचा और दो चाचियाँ वहाँ आए और मुझे धमकी दी कि ‘चाहे कुछ भी हो, मुझे चंदू तेज के पक्ष में बात करनी चाहिए, सारा दोष खुद पर लेना चाहिए, वरना मुझे मार दिया जाएगा।”

6. असल में, हम नरेश अनेजा बनाम उ.प्र. राज्य, (2025) 2 एससीसी 604 और शरीफ अहमद बनाम उ.प्र. राज्य (2024) 14 एससीसी 122 में इस न्यायालय के फैसलों का हवाला दे सकते हैं, जिनमें यह कहा गया है कि डर पैदा करने के इरादे के बिना दी गई धमकियाँ भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के तहत आपराधिक धमकी नहीं मानी जाती हैं। इस मामले में, जैसा कि अभिलेख से देखा जा सकता



है, पीड़िता ने अपने बयान में सुधार किया जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया कि “दो चाचियों और एक चाचा ने” उसे धमकी दी, जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज बयान से साफ़ तौर पर अलग और सुधरा हुआ बयान है। घटनाओं के समय में यह विरोधाभास अभियोजन पक्ष के बयान पर गंभीर संदेह पैदा करता है या दूसरे शब्दों में, अपीलकर्ता का नाम सात दिन बाद अचानक “एक चाचा” के अस्पष्ट ज़िक्र के माध्यम से सामने आया, जिससे अभियोजन पक्ष का मामला और कमज़ोर हो गया। वैसे भी, डर पैदा करने के इरादे के बिना केवल शब्द कहना आपराधिक धमकी नहीं माना जा सकता।” इसलिए, हमारी सोच यह है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत दर्ज पीड़िता के बयान में लगाया गया आरोप, भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के तहत अपीलकर्ता पर मुकदमा चलाने के लिए कानूनी रूप से अपर्याप्त होगा।

7. इसके अलावा, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के तहत दर्ज साफ़ बयान से पता चलता है कि आपराधिक धमकी देने का कोई इरादा पहली नज़र में साबित नहीं हुआ, क्योंकि किसी व्यक्ति पर आपराधिक धमकी का मुकदमा चलाने के लिए डर पैदा करने का साफ़ इरादा होना ज़रूरी है, चाहे पीड़ित डरा हो या नहीं। इसके अभाव में, “एक अंकल” शब्द के अस्पष्ट ज़िक्र के आधार पर अपीलकर्ता के खिलाफ़ मुकदमा जारी रखने से कोई अपराध साबित नहीं होता। पहली नज़र में ठोस सबूतों के बिना लगाए गए अस्पष्ट आरोप भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के तहत अपराध नहीं बनाते। आखिर में, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि एक अधिवक्ता (इस मामले में अपीलकर्ता) का अपनी पेशेवर इ्यूटी निभाते हुए - जैसे सलाह या सुझाव देना - मौजूद होना धमकी नहीं माना जा सकता। चूँकि यह बुनियादी तथ्य इस मामले में साफ़ तौर पर मौजूद नहीं है, इसलिए हम सूचनाकर्ता (पीड़ित) और प्रतिवादी संख्या 1 (राज्य) की ओर से पेश हुए अधिवक्ताओं की दलीलों से सहमत नहीं हो सकते। दूसरे शब्दों में, हमारी सोच यह है कि अपीलकर्ता की



ओर से पेश अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलें और आधार स्वीकार किए जाने चाहिए।
इसलिए, उन्हें स्वीकार किया जाता है।”

22. आवेदक के अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के '**अनुकूल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य**' 2025 आईएनएससी 1153 मामले के निर्णय का भी हवाला देते हुए तर्क दिया कि यह मामला कार्यवाही को रद्द करने के लिए उपयुक्त है। उन्होंने उस निर्णय के पैरा 11.1 और 11.4 पर ज़ोर दिया, जो इस प्रकार हैं:

11.1. इस न्यायालय ने 'हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल' (1992 एससीसी (आपराधिक) 426) मामले में, पैराग्राफ 102 में, ऐसी श्रेणियाँ बताई हैं जिनमें कानूनी कार्यवाही को रद्द करना सही है। ये हैं:

“(1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें वैसा ही मान लिया जाए और पूरी तरह से स्वीकार कर लिया जाए, तो भी वे पहली नज़र में कोई अपराध साबित नहीं करते या आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते।

(2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट और उसके साथ मौजूद अन्य कागज़ात (अगर कोई हों) में लगाए गए आरोप किसी ऐसे संज्ञेय अपराध का पता नहीं देते, जिसके लिए पुलिस अधिकारियों द्वारा धारा 156(1) के तहत विवेचना की ज़रूरत हो, सिवाय इसके कि मजिस्ट्रेट ने धारा 155(2) के दायरे में कोई आदेश दिया हो।

(3) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए बिना विवाद वाले आरोप और उनके समर्थन में इकट्ठा किए गए सबूत किसी अपराध के होने का पता नहीं देते और आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते।

(4) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं बनाते बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध बनाते हैं, वहाँ धारा 155(2) के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा विवेचना की अनुमति नहीं है।

(5) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हों कि उनके आधार पर कोई भी समझदार व्यक्ति कभी भी इस सही नतीजे पर न पहुँच सके कि आरोपी के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहाँ संबंधित संहिता या अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्रवाई शुरू की गई है) के किसी प्रावधान में कार्रवाई शुरू करने और उसे जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक हो; और/या जहाँ संहिता या अधिनियम में कोई खास प्रावधान हो जो पीड़ित पक्ष की शिकायत का असरदार समाधान देता हो।

(7) जहाँ आपराधिक कार्रवाई साफ तौर पर दुर्भावनापूर्ण हो और/या जहाँ कार्रवाई दुर्भावना के साथ, आरोपी से बदला लेने और निजी या व्यक्तिगत रंजिश के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की गई हो।

11.4. फिर भी, एक अपवाद माना गया है जहाँ बचाव पक्ष ऐसे बेहतरीन और ठोस सबूतों पर निर्भर करता है जिन्हें नकारा न जा सके - जैसे कि बिना किसी विवाद वाली प्रमाणिकता वाले दस्तावेज़ - जो साफ तौर पर दिखाते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना अन्यायपूर्ण और दमनकारी होगा। इस सिद्धांत को सूर्यलक्ष्मी कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम राजवीर इंडस्ट्रीज लिमिटेड, (2008) 13 एससीसी 678 के मामले में मान्यता दी गई थी, और बाद के फैसलों में भी इसका पालन किया गया।”

उक्त निर्णय के पैरा 17, 18 और 19 पर भी जोर दिया गया, जो इस प्रकार हैं:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



“17. इस न्यायालय ने कई फैसलों में दीवानी विवादों को आपराधिक कार्यवाही में बदलने की प्रवृत्ति की निंदा की है। इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम मेसर्स एनईपीसी इंडिया लिमिटेड; (2006) 6 एससीसी 738 के मामले में, यह माना गया था कि आपराधिक कानून का इस्तेमाल वाणिज्यिक या संविदात्मक से जुड़े मामलों में हिसाब-किताब बराबर करने के लिए नहीं किया जा सकता है, और इस तरह का दुरुपयोग प्रक्रिया का गलत इस्तेमाल है। निर्णय के निम्नलिखित पैरा इस संदर्भ में प्रासंगिक हैं:

“9. हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक सिद्धांत इस प्रकार हैं:

(i) शिकायत को तब रद्द किया जा सकता है जब उसमें लगाए गए आरोपों को, भले ही उन्हें ज्यों का त्यों और पूरी तरह से सच मान लिया जाए, तो भी वे पहली नज़र में कोई अपराध नहीं बनाते या आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप को साबित नहीं करते। इसके लिए, शिकायत की पूरी तरह से विवेचना करनी होगी, लेकिन आरोपों की सच्चाई या गुण-दोष की विवेचना किए बिना। शिकायत रद्द करने की आवेदन पर विचार करते समय न तो विस्तृत विवेचना, न ही सबूतों की बारीकी से विश्लेषण और न ही शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या असलियत का आकलन करने की ज़रूरत होती है।

(ii) शिकायत को तब भी रद्द किया जा सकता है जब यह न्यायालय की प्रक्रिया का साफ़ तौर पर दुरुपयोग हो, जैसे कि जब आपराधिक कार्यवाही बदले की भावना या नुकसान पहुँचाने के इरादे से शुरू की गई हो, या जब आरोप बेतुके और असल में असंभव हों।

(iii) हालाँकि, रद्द करने की शक्ति का इस्तेमाल किसी जायज़ मुकदमे को दबाने या रोकने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इस



शक्ति का इस्तेमाल बहुत सोच-समझकर और पूरी सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

(iv) शिकायत में कथित अपराध के कानूनी तत्वों को शब्द-दर-शब्द दोहराने की ज़रूरत नहीं है। अगर शिकायत में ज़रूरी तथ्यों का आधार बताया गया है, तो सिर्फ़ इस आधार पर कार्यवाही रद्द नहीं की जानी चाहिए कि कुछ तत्वों का विस्तार से ज़िक्र नहीं किया गया है। शिकायत को रद्द करना तभी उचित है जब उसमें अपराध साबित करने के लिए बेहद ज़रूरी बुनियादी तथ्य भी न हों।

(v) तथ्यों के किसी सेट से ये बातें सामने आ सकती हैं: (क) पूरी तरह से एक सिविल दोष या (ख) पूरी तरह से एक आपराधिक अपराध या (ग) एक सिविल दोष और साथ ही एक आपराधिक अपराध। कोई व्यावसायिक लेन-देन या संविदा से जुड़ा विवाद, सिविल कानून के तहत राहत पाने के लिए कानूनी कार्रवाई का आधार बनने के अलावा, इसमें आपराधिक अपराध भी शामिल हो सकता है। चूंकि सिविल कार्यवाही की प्रकृति और दायरा आपराधिक कार्यवाही से अलग होता है, इसलिए सिर्फ़ इस बात से कि शिकायत किसी व्यावसायिक लेन-देन या संविदा के उल्लंघन से जुड़ी है, जिसके लिए सिविल राहत उपलब्ध है या ली जा चुकी है, असल बात यह है कि क्या शिकायत में लगाए गए आरोपों से कोई आपराधिक अपराध बनता है या नहीं।

10. इस मुद्दे पर बात करते हुए, बिज़नेस जगत में पूरी तरह से सिविल विवादों को आपराधिक वाद में बदलने की बढ़ती प्रवृत्ति पर ध्यान देना ज़रूरी है। ऐसा साफ़ तौर पर इस आम धारणा के कारण हो रहा है कि सिविल कानून के तहत मिलने वाले उपाय समय लेने वाले होते हैं और उनसे उधार देने वालों/लेनदारों के हितों की ठीक से



सुरक्षा नहीं हो पाती। ऐसी प्रवृत्ति कई पारिवारिक विवादों में भी देखी जाती है, जिससे शादियाँ/परिवार हमेशा के लिए टूट जाते हैं। यह धारणा भी है कि अगर किसी व्यक्ति को किसी तरह आपराधिक मुकदमे में फँसा दिया जाए, तो तुरंत समझौता होने की संभावना रहती है। ऐसे दीवानी विवादों और दावों को सुलझाने के लिए, जिनमें कोई आपराधिक अपराध शामिल नहीं है, आपराधिक मुकदमे का दबाव डालकर समाधान करने की किसी भी कोशिश की निंदा की जानी चाहिए और उसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए।”

18. इसी तरह, इंदर मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य; एआईआर 2008 एससी 251 मामले में, इस बात पर जोर दिया गया था कि आपराधिक मुकदमे को परेशान करने या निजी दुश्मनी निकालने के ज़रिया के तौर पर इस्तेमाल करने की इजाज़त नहीं दी जानी चाहिए। गंगा धर कलिता बनाम असम राज्य; (2015) 9 एससीसी 647 मामले में, इस न्यायालय ने फिर से दोहराया कि सिविल प्रकृति के संपत्ति विवादों के संबंध में आपराधिक शिकायतें, जो केवल आरोपी को परेशान करने या सिविल मुकदमे में दबाव बनाने के लिए दायर की जाती हैं, वे प्रक्रिया का दुरुपयोग हैं।

19. हाल ही में, शैलेश कुमार सिंह उर्फ शैलेश आर. सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2025 आईएनएससी 869 मामले में, इस न्यायालय ने सिविल उपायों के विकल्प के तौर पर आपराधिक कार्यवाही का इस्तेमाल करने के चलन को गलत बताया। न्यायालय ने कहा कि जहाँ विवाद मूल रूप से सिविल प्रकृति का हो, वहाँ आपराधिक मुकदमे के ज़रिए पैसे की वसूली नहीं की जा सकती। न्यायालय ने उच्च न्यायालय को चेतावनी दी कि वे ऐसे मामलों में समझौते का निर्देश न दें, बल्कि भजन लाल मामले में तय सिद्धांतों को लागू करें। इस संदर्भ में नीचे दिए गए पैराग्राफ महत्वपूर्ण हैं।



“9. हम जो समझ पाए हैं, वह यह है कि पार्टियों के बीच ज़बानी समझौता हुआ था। हो सकता है कि प्रतिवादी संख्या 4 ने उस ज़बानी समझौते के तहत कुछ पैसे दिए हों और यह भी हो सकता है कि अपील करने वाले पर प्रतिवादी संख्या 4 का कुछ पैसा बकाया हो। हालाँकि, सवाल यह है कि क्या पहली नज़र में अपील करने वाले ने धोखाधड़ी का कोई अपराध किया है।

10. उच्च न्यायालय को कितनी बार याद दिलाया जाए कि धोखाधड़ी का अपराध साबित करने के लिए, अभिलेख पर पहली नज़र में ही कुछ ऐसा होना चाहिए जिससे पता चले कि आरोपी की मंशा शुरू से ही सूचनाकर्ता के साथ धोखाधड़ी करने की थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट को पढ़ने से इसमें कोई आपराधिक बात नज़र नहीं आती।

11. यह पूरा मामला इस न्यायालय के हालिया निर्णय “दिल्ली रेस क्लब (1940) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य” (2024) 10 एससीसी 690 के दायरे में आता है। उस निर्णय में, धोखाधड़ी और आपराधिक विश्वासघात क्या है, इस बारे में पूरे कानून को विस्तार से समझाया गया है। ऐसा लगता है कि उच्च न्यायालय के सामने याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने इसी निर्णय का हवाला दिया था। हालाँकि, मामले के गुण-दोष पर विचार करने के बजाय, उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को मध्यस्थता के लिए जाने का निर्देश देना उचित समझा, और वह भी एक शर्त के तौर पर कि उसे चौथे प्रतिवादी को 25,00,000 रुपये का भुगतान करना होगा। हमारी समझ में नहीं आता कि उच्च न्यायालय को ऐसा क्यों करना चाहिए। उच्च न्यायालय या तो यह कहते हुए याचिका मंज़ूर कर सकता है कि कोई अपराध नहीं बनता है, या यह कहते हुए याचिका खारिज कर सकता है कि वाद रद्द करने का कोई आधार नहीं बनता है। उच्च न्यायालय



को सूचनाकर्ता की मदद क्यों करनी चाहिए कि वह आरोपी से बकाया रकम वसूल कर सके? यह सिविल न्यायालय या व्यावसायिक न्यायालय का काम है कि वे पैसे की वसूली के लिए दायर मुकदमे या किसी अन्य कार्यवाही में इस पर विचार करें, चाहे वह आर्बिट्रेशन अधिनियम, 1996 के तहत हो या आई बी संहिता, 2016 के प्रावधानों के तहत।”.

12. उच्च न्यायालय यह क्यों नहीं समझ पाया कि दोनों पक्षों के बीच का पूरा विवाद सिविल प्रकृति का है।

13. हमने प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से पेश अधिवक्ता से भी पूछा कि क्या उनके वादी ने पैसे की वसूली के लिए कोई सिविल वाद दायर किया है या कोई अन्य कार्यवाही शुरू की है। ऐसा लगता है कि आज तक पैसे की वसूली के लिए कोई सिविल वाद दायर नहीं किया गया है। पार्टियों के बीच सिविल विवाद में, खासकर, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करके और पुलिस की मदद लेकर पैसे की वसूली नहीं की जा सकती। यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

14. हम बहुत कुछ कह सकते थे लेकिन हम आगे कुछ भी कहने से बच रहे हैं। यदि प्रतिवादी संख्या 4 को कोई खास रकम वसूलनी है, तो वह सिविल वाद दायर कर सकता है या कानून के तहत उपलब्ध कोई अन्य उचित उपाय अपना सकता है। उसे आपराधिक कार्यवाही का सहारा लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

15. उच्च न्यायालय ने जिस तरह से विवादित आदेश पारित किया है, उससे हम काफी परेशान हैं। उच्च न्यायालय ने पहले अपीलकर्ता को प्रतिवादी संख्या 4 को 25,00,000 रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया और उसके बाद उसे समझौते के उद्देश्य से मध्यस्थता और



सुलह केंद्र के समक्ष पेश होने का निर्देश दिया। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर रिट याचिका या प्रथम सूचना रिपोर्ट या किसी अन्य आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत दायर विविध आवेदन में उच्च न्यायालय से ऐसी उम्मीद नहीं की जाती है। उच्च न्यायालय से यह उम्मीद की जाती है कि वह प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों और दावों के साथ-साथ अभिलेख पर मौजूद अन्य सामग्री, यदि कोई हो, पर विचार करे। ऐसा लगता है कि उच्च न्यायालय इस न्यायालय के “हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य” (1992 अनुपूरक(1) एससीसी 335 में रिपोर्ट किया गया) के निर्णय में बताए गए स्थापित सिद्धांतों को भूल गया है।”

23. आवेदक के अधिवक्ता ने इस बात पर जोर देने के लिए कि भारतीय दंड संहिता की धारा 504 के तहत अपराध नहीं बनता है, इस न्यायालय के 2016 के **आवेदन संख्या 38781 (मनमोहन कृष्ण बनाम यूपी राज्य और अन्य), 2024:AHC:31717** वाले निर्णय का भी हवाला दिया। उन्होंने उस निर्णय के पैरा 28 से 32 पर जोर दिया, जो इस प्रकार हैं:

“28. उन्होंने आगे कहा कि आवेदक पर भारतीय दंड संहिता की धारा 504 के तहत लगाए गए आरोप ऐसे नहीं हैं जिनसे भारतीय दंड संहिता की धारा 504 के प्रावधान लागू हों। आसानी से देखने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 504 का संबंधित प्रावधान यहाँ दिया गया है।

“504. जो कोई किसी व्यक्ति को साशय अपमानित करेगा और तद्वारा उस व्यक्ति को इस आशय से, या यह सम्भाव्य जानते हुए, प्रकोपित करेगा कि ऐसे प्रकोपन से वह लोक शान्ति भंग या कोई अन्य अपराध कारित करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास



से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा ”

29. धारा 504 लागू करने के लिए ज़रूरी बातें ये हैं- (क) जानबूझकर अपमान करना, (ख) अपमान ऐसा हो जिससे अपमानित व्यक्ति उकसावे में आ जाए, और (ग) आरोपी का इरादा या जानकारी होनी चाहिए कि ऐसे उकसावे से दूसरा व्यक्ति सार्वजनिक शांति भंग करेगा या कोई अन्य अपराध करेगा। जानबूझकर किया गया अपमान इतना गंभीर होना चाहिए कि उससे कोई व्यक्ति सार्वजनिक शांति भंग करने या कोई अन्य अपराध करने के लिए उकसाया जा सके। जो व्यक्ति जानबूझकर अपमान करता है और उसका इरादा या जानकारी होती है कि इससे किसी अन्य व्यक्ति को उकसावा मिलेगा और उस उकसावे से सार्वजनिक शांति भंग होगी या कोई अन्य अपराध होगा, तो ऐसी स्थिति में धारा 504 की शर्तें पूरी होती हैं। अपराध के ज़रूरी तत्वों में से एक यह है कि कोई ऐसा काम या व्यवहार हुआ हो जो जानबूझकर किए गए अपमान के बराबर हो, और केवल यह तथ्य कि आरोपी ने सूचनाकर्ता को अपशब्द कहे, धारा 504 के तहत सज़ा के लिए काफ़ी नहीं है।

30. इस तर्क के समर्थन में, उन्होंने फ़ियोना श्रीखंडे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; एआईआर 2014 एससी 957 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ़ 13 का हवाला दिया है, जो इस प्रकार है:

“धारा 504 में ये बातें शामिल हैं: (क) जान-बूझकर अपमान करना, (ख) अपमान ऐसा हो जिससे अपमानित व्यक्ति को उकसावा मिले, और (ग) आरोपी का इरादा या जानकारी हो कि ऐसे उकसावे से कोई व्यक्ति सार्वजनिक शांति भंग कर सकता है या कोई अन्य अपराध कर सकता है। जान-बूझकर किया गया अपमान इतना गंभीर होना चाहिए कि उससे व्यक्ति सार्वजनिक शांति भंग करने या कोई अन्य अपराध करने के लिए उकसाया जाए। जो व्यक्ति जान-बूझकर



अपमान करता है और उसका इरादा या जानकारी होती है कि इससे किसी अन्य व्यक्ति को उकसावा मिलेगा और उस उकसावे से सार्वजनिक शांति भंग होगी या कोई अन्य अपराध होगा, तो ऐसी स्थिति में धारा 504 की शर्तें पूरी होती हैं। इस अपराध के लिए ज़रूरी तत्वों में से एक यह है कि कोई ऐसा काम या व्यवहार हुआ हो जो जान-बूझकर अपमान करने के बराबर हो; सिर्फ़ यह बात कि आरोपी ने सूचनाकर्ता को गाली दी, धारा 504 के तहत सज़ा के लिए काफी नहीं है।”

चौथी दलील

31. आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक पर भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था, लेकिन यह धारा इस मामले में लागू नहीं होती है। आसानी से देखने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 506 नीचे दी गई है:

“506. **आपराधिक अभित्रास के लिए दण्ड** - जो कोई आपराधिक अभित्रास का अपराध करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा ।

यदि धमकी मृत्यु या घोर उपहति इत्यादि कारित करने की हो
- तथा यदि धमकी मृत्यु या घोर उपहति कारित करने की, या अग्नि द्वारा किसी सम्पत्ति का नाश कारित करने की या मृत्यु दण्ड से या आजीवन कारावास से, या सात वर्ष की अवधि तक के कारावास से दण्डनीय अपराध कारित करने की, या किसी स्त्री पर असतित्व का लांछन लगाने की हो, तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से,



जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित जाएगा।"

32. उन्होंने आगे कहा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 506 लागू होने के लिए तीन बातें जरूरी हैं। पहली, किसी दूसरे व्यक्ति को धमकाने का काम होना चाहिए। दूसरी, धमकाए गए व्यक्ति की प्रतिष्ठा या संपत्ति को नुकसान पहुंचाना, या ऐसे व्यक्ति को नुकसान पहुंचाना जिसमें धमकाए गए व्यक्ति की दिलचस्पी हो। और तीसरी, धमकी का उद्देश्य धमकाए गए व्यक्ति को डराना-धमकाना या घबराहट पैदा करना होना चाहिए, या फिर ऐसा कोई काम करने के लिए मजबूर करना होना चाहिए जिसे करने के लिए वह कानूनी रूप से बाध्य नहीं है, या ऐसा कोई काम न करने के लिए मजबूर करना होना चाहिए जिसे करने का उसे कानूनी अधिकार है।"

24. आवेदक के अधिवक्ता ने आखिर में सर्वोच्च न्यायालय के 'आइजैक इसांगा मुसुम्बा और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य' (2015 एएलएल एससी 3483) मामले के निर्णय का हवाला दिया है और खास तौर पर पैरा 3 पर जोर दिया है, जो इस प्रकार है:

"3. हमने उस प्रथम सूचना रिपोर्ट को पढ़ा है जिसे रिट याचिका के साथ अनुलग्नक पी-7 के तौर पर जोड़ा गया है। इससे हमें पता चलता है कि शिकायत करने वालों का आरोप है कि आरोपी व्यक्तियों ने युगांडा की न्यायालय द्वारा उनके खिलाफ जारी किए गए इंटरनेशनल वारंट की कॉपी और युगांडा के न्याय और संवैधानिक मामलों के मंत्रालय द्वारा लिखे गए पत्र दिखाए हैं। साथ ही, आरोपियों ने 20 मिलियन डॉलर (जो 110 करोड़ रुपये के बराबर हैं) की जबरन वसूली की धमकी दी है। शिकायत में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि आरोपियों की मांग के बाद, शिकायत करने वालों ने उन्हें कोई रकम दी हो। अगर ऐसा है, तो हमें यह समझ नहीं आता कि भारतीय दंड संहिता की धारा 383 के तहत जबरन वसूली का अपराध कैसे बनता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 383 कहती है कि जो कोई भी जानबूझकर किसी व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने का डर



दिखाता है, और इस तरह बेईमानी से उस डरे हुए व्यक्ति को कोई संपत्ति, कीमती प्रतिभूति यां, या हस्ताक्षरित या मुहरबंद कोई ऐसी चीज सौंपने के लिए उकसाता है जिसे कीमती प्रतिभूति में बदला जा सके, तो वह 'जबरन वसूली' का अपराध करता है। इसलिए, जब तक धमकी के बाद आरोपी व्यक्ति को संपत्ति नहीं सौंपी जाती, तब तक जबरन वसूली का अपराध नहीं बनता है और पुलिस धारा 384 के तहत अपराध के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं कर सकती थी।”

25. दूसरी ओर, विरोधी पक्ष के अधिवक्ता सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय का हवाला देते हैं जो 'केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम आर्यन सिंह वगैरह' मामले में 10.01.2023 को आपराधिक अपील संख्या 1025-1026 (2023) में सुनाया गया था। वे यह तर्क देते हैं कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 / भारतीय न्याय संहिता की धारा 528 के तहत मिली शक्तियों का इस्तेमाल करके इन कानूनी कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता। वे पैरा 4.1 पर जोर देते हैं, जो इस प्रकार है:

“4.1 उच्च न्यायालय के विवादित सामान्य निर्णय और आदेश से ऐसा लगता है कि उच्च न्यायालय ने अपने सामने चल रही कार्यवाही को ऐसे देखा, मानो वह कोई 'मिनी परीक्षण' (छोटी सुनवाई) कर रहा हो या परीक्षण पूरा होने के बाद परीक्षण न्यायालय के निर्णय और आदेश के खिलाफ दी गई अर्जियों पर विचार कर रहा हो। कानून के बुनियादी सिद्धांत के अनुसार, डिस्चार्ज (आरोप से बरी करने) और/या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के चरण में, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का इस्तेमाल करते समय, न्यायालय को 'मिनी परीक्षण' करने की ज़रूरत नहीं होती है। उच्च न्यायालय ने अपने विवादित सामान्य निर्णय और आदेश में कहा है कि आरोपी के खिलाफ आरोप साबित नहीं हुए हैं। यह वह चरण नहीं है जहाँ अभियोजन पक्ष/विवेचना एजेंसी को आरोप साबित करने हों। आरोप तो परीक्षण के दौरान अभियोजन पक्ष/विवेचना एजेंसी द्वारा पेश किए गए



सबूतों के आधार पर साबित किए जाने होते हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय ने इस चरण में आरोपी के खिलाफ आरोपों और विवेचना के दौरान इकट्ठा की गई सामग्री की विस्तार से विवेचना करके बड़ी गलती की है। डिस्चार्ज के चरण में और/या आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का इस्तेमाल करते समय, न्यायालय का क्षेत्राधिकार बहुत सीमित होता है और उसे केवल इस बात पर विचार करना होता है कि “क्या आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद है, जिसके आधार पर आरोपी का परीक्षण किया जाना चाहिए या नहीं।”

26. इकट्ठा किए गए सबूतों के आधार पर जबरन वसूली का मामला बनता है, यह तर्क देने के लिए **मेसर्स बालाजी ट्रेडर्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2025 आईएनएससी 806)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी सहारा लिया गया है। वे उस निर्णय के पैरा 14 पर जोर देते हुए कहते हैं कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत मिली शक्तियों का इस्तेमाल बहुत सोच-समझकर और कम ही किया जाना चाहिए। वह पैरा इस प्रकार है:

“14. इस तरह, भारतीय दंड संहिता की धारा 386 (जो भारतीय दंड संहिता की धारा 384 का ही एक गंभीर रूप है) और धारा 387 के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि पहली धारा अपने आप में एक अपराध है, जबकि दूसरी धारा एक प्रक्रिया है; यह जबरन वसूली का अपराध करने से पहले का एक चरण है। विधायिका ने इस प्रक्रिया को एक अलग अपराध बनाकर इसे दंडनीय बनाने का ध्यान रखा था। इसलिए, इस धारा के तहत अपराध के लिए जबरन वसूली का अपराध होना ज़रूरी नहीं है। यह निष्कर्ष निकालना सही होगा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 387 के तहत मुकदमा चलाने के लिए संपत्ति का सौंपा जाना ज़रूरी नहीं है।”

27. **धनंजय उर्फ धनंजय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य व अन्य (2007 एआईआर एससीडब्ल्यू 923)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी हवाला दिया गया है, जिसमें धारा 383 की व्याख्या इस प्रकार की गई थी:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



“धारा 384 में जबरन वसूली के लिए सज़ा का प्रावधान है। जबरन वसूली क्या है, यह भारतीय दंड संहिता की धारा 383 में इस तरह बताया गया है:

"383. उद्दापन :- जो कोई किसी व्यक्ति को स्वयं उस व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को कोई क्षति करने के भय में साशय डालता है, और तद्वारा इस प्रकार भय में डाले गए व्यक्ति को, कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुद्रांकित कोई चीज, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सके, किसी व्यक्ति को परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करता है, वह “उद्दापन” करता है। "

ऊपर बताए गए प्रावधान को ध्यान से पढ़ने पर पता चलता है कि अपराध के लिए ये बातें ज़रूरी हैं:

1. आरोपी को किसी व्यक्ति को उस व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने का डर दिखाना चाहिए।
2. किसी व्यक्ति को ऐसा डर दिखाना जानबूझकर किया गया होना चाहिए।
3. आरोपी को उस डरे हुए व्यक्ति को किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति, कीमती प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुहरबंद कोई ऐसी चीज सौंपने के लिए उकसाना चाहिए जिसे कीमती प्रतिभूति में बदला जा सकता है।
4. ऐसा उकसाना बेईमानी से किया जाना चाहिए।

जैसा कि सभी जानते हैं, प्रथम सूचना रिपोर्ट को पूरी तरह से पढ़ा जाना चाहिए। इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पार्टियों के बीच बैग की सप्लाई से जुड़े लेन-देन हुए थे। इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि अपीलकर्ता को प्रथम सूचक से कुछ रकम लेनी थी। खुद प्रथम सूचना रिपोर्ट से पता चलता है कि घटना की दिनांक से



एक साल पहले हिसाब-किताब निपटा लिया गया था और अपीलकर्ता को गौतम दुबे से लगभग 400-500 रुपये लेने थे।”

28. पक्षों द्वारा दी गई दलीलों और जिन वाद कानूनों का हवाला दिया गया है, उन्हें ध्यान में रखते हुए भारतीय न्याय संहिता की धारा 308(1) और (2), धारा 351(2) और धारा 352 के प्रावधानों पर ध्यान देना ज़रूरी है, जो नीचे दिए गए हैं:

“308. उद्दापन :- जो कोई किसी व्यक्ति को स्वयं उस व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को कोई क्षति करने के भय में साशय डालता है, और तद्द्वारा इस प्रकार भय में डाले गए व्यक्ति को, कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या मुद्रांकित कोई चीज, जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सके, किसी व्यक्ति को परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करता है, वह “उद्दापन” करता है।

दृष्टान्त -

(क) A, Z को धमकी देता है कि वह Z के बारे में मानहानिकारक लेख छापेगा, जब तक कि Z उसे पैसे न दे। इस तरह वह Z को पैसे देने के लिए मजबूर करता है। A ने जबरन वसूली का अपराध किया है।

(ख) A, Z को धमकी देता है कि वह Z के बच्चे को गलत तरीके से कैद में रखेगा, जब तक कि Z एक प्रॉमिसरी नोट (वचन-पत्र) पर हस्ताक्षर करके A को न दे दे, जिसमें Z, A को कुछ पैसे देने के लिए बाध्य हो। Z नोट पर हस्ताक्षर करके उसे दे देता है। A ने जबरन वसूली का अपराध किया है।

(ग) A धमकी देता है कि वह Z के खेत को जोतने के लिए लठैत भेजेगा, जब तक कि Z, B के साथ एक बॉन्ड पर हस्ताक्षर करके उसे न दे दे, जिसमें Z जुर्माने की शर्त पर B को कुछ उपज देने के लिए बाध्य हो, और इस तरह वह Z को बॉन्ड पर हस्ताक्षर करने और उसे देने के लिए मजबूर करता है। A ने जबरन वसूली का अपराध किया है।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



(घ) A, Z को गंभीर क्षति पहुँचाने का डर दिखाकर, बेईमानी से Z को एक खाली कागज़ पर हस्ताक्षर करने या अपनी मुहर लगाने और उसे A को देने के लिए मजबूर करता है। Z कागज़ पर हस्ताक्षर करके उसे A को दे देता है। यहाँ, चूँकि हस्ताक्षर किए गए कागज़ को कीमती प्रतिभूति में बदला जा सकता है, इसलिए A ने जबरन वसूली का अपराध किया है।

(ङ) A, एक इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस से मैसेज भेजकर Z को धमकी देता है कि "तुम्हारा बच्चा मेरे कब्ज़े में है, और अगर तुमने मुझे एक लाख रुपये नहीं भेजे तो उसे मार दिया जाएगा।" इस तरह A, Z को पैसे देने के लिए मजबूर करता है। A ने जबरन वसूली (extortion) का अपराध किया है।

(2) जो कोई भी जबरन वसूली करता है, उसे किसी भी तरह के कारावास की सज़ा हो सकती है जो सात साल तक बढ़ सकती है, या जुर्माना, या दोनों सज़ाएँ हो सकती हैं।”

भारतीय न्याय संहिता की धारा 351(1) और (2) इस प्रकार है:

“351. आपराधिक अभिवास -(1) जो कोई, किसी अन्य व्यक्ति के शरीर, ख्याति या सम्पत्ति को या किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर या ख्याति को, जिससे कि वह व्यक्ति हितबद्ध हो, कोई क्षति करने की धमकी, उस अन्य व्यक्ति को इस आशय से देता है कि उसे संत्रास कारित किया जाए, या उससे ऐसी धमकी के निष्पादन का परिवर्जन करने के साधन स्वरूप कोई ऐसा कार्य कराया जाए, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से आबद्ध न हो, या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप कराया जाए, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से हकदार हो, वह आपराधिक अभिवास करता है ।

स्पष्टीकरण--किसी ऐसे मृत व्यक्ति की ख्याति को क्षति करने की धमकी जिससे वह व्यक्ति, जिसे धमकी दी गई है, हितबद्ध हो, इस धारा के अन्तर्गत आता है ।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



दृष्टांत

सिविल वाद चलाने से उपरत रहने के लिए ख को उत्प्रेरित करने के प्रयोजन से ख के घर को जलाने की धमकी क देता है । क आपराधिक अभिवास का दोषी है ।

(2) जो कोई आपराधिक अभिवास का अपराध करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा ।

भारतीय न्याय संहिता की धारा 352 इस प्रकार है:

“धारा 352. लोकशांति भंग कराने को प्रकोपित करने के आशय से जानबूझकर अपमान- जो कोई किसी व्यक्ति को साशय अपमानित करेगा और तदद्वारा उस व्यक्ति को इस आशय से, या यह सम्भाव्य जानते हुए, प्रकोपित करेगा कि ऐसे प्रकोपन से वह लोक शान्ति अंग या कोई अन्य अपराध कारित करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा ”

29 प्रथम सूचना रिपोर्ट, बयानों और आरोप पत्र को सीधे तौर पर पढ़ने से - जिसमें सिर्फ शिकायत करने वाले और आवेदकों के बयान शामिल हैं - यह पता चलता है कि किसी व्यक्ति या किसी और को क्षति पहुँचाने के डर में जानबूझकर डालने का कोई आरोप नहीं है, और न ही इस तरह डराकर उस व्यक्ति को बेईमानी से कोई संपत्ति या कीमती प्रतिभूति किसी और को देने के लिए मजबूर करने का कोई आरोप है।

30. इस मामले में, आरोप यह था कि आर.डब्ल्यू.ए. बिना अधिकार के ₹500/- वसूल रही थी और यह कहा गया था कि अगर गाड़ियाँ नहीं हटाई गई, तो तीसरी बार गाड़ी में ताला लगाने के बाद ₹500/- का शुल्क लिया जाएगा।



31. ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे पता चले कि आवेदकों ने जान-बूझकर सूचनाकर्ता या किसी अन्य निवासी को क्षति पहुँचाने का डर दिखाया हो, या किसी निवासी या सूचनाकर्ता को बेईमानी से किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति या प्रतिभूति सौंपने के लिए उकसाने की कोशिश की हो। सूचनाकर्ता से कोई रकम नहीं वसूली गई या ली गई।
32. भले ही सभी सबूतों को पूरी तरह सच मान लिया जाए, फिर भी भारतीय न्याय संहिता की धारा 352 के तहत अपराध नहीं बनता है, क्योंकि जान-बूझकर अपमान करने का कोई आरोप नहीं है जिससे कोई व्यक्ति भड़क जाए और सार्वजनिक शांति भंग करे या कोई अन्य अपराध करे।
33. भारतीय न्याय संहिता की धारा 351 के तहत परिभाषित आपराधिक धमकी का आरोप भी आरोप पत्र के साथ दाखिल सबूतों से साबित नहीं होता है; इन सबूतों में केवल सूचनाकर्ता और आवेदकों के बयान शामिल हैं।
34. इस तरह, इकट्ठा की गई सामग्री (जिसमें बयान और आरोप पत्र का हिस्सा शामिल है) को अगर पूरी तरह सच भी मान लिया जाए, तो भी वे उन धाराओं के तहत कोई अपराध नहीं बनातीं जिनके तहत आवेदकों पर आरोप लगाए गए हैं या उन्हें समन भेजा गया है।
35. यह न्यायालय उस तरीके को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकता जिससे इस मामले में विवेचना की गई है। सूचनाकर्ता के बयान के अनुसार, आर.डब्ल्यू.ए. द्वारा जबरन वसूली का आरोप लगाया गया था, जिसका आवेदकों ने अपने बयानों में खंडन किया; इसलिए, विवेचना अधिकारी के लिए यह ज़रूरी था कि वे निवासियों के बयान लेते और आर.डब्ल्यू.ए. द्वारा पारित प्रस्ताव (जिसमें उनके उप-नियम भी शामिल हैं) की पुष्टि करते, ताकि यह राय बनाई जा सके कि लगाए गए आरोप अपराध की श्रेणी में आते हैं या नहीं। ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे पता चले कि सूचनाकर्ता से वास्तव में कोई रकम ली गई थी, जो जबरन वसूली के अपराध के लिए एक ज़रूरी शर्त है। आरोप पत्र जल्दबाजी में केवल सूचनाकर्ता और आवेदकों के बयान दर्ज करने के बाद ही दाखिल कर दी गई; यहां तक कि सूचनाकर्ता द्वारा दी गई सामग्री की भी क्रॉस-चेकिंग नहीं की गई। अभिलेख के अनुसार, किसी भी निवासी का ऐसा कोई बयान मौजूद



नहीं है जिससे पता चले कि किसी भी समय कोई धमकी दी गई थी या कोई जबरन वसूली की गई थी। यह न्यायालय पहले ही निष्पक्ष विवेचना की ज़रूरत पर ज़ोर दे चुका है, जैसा कि **संजीव उर्फ कल्लू सेठिया (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों से स्पष्ट है। इस मामले में निष्पक्ष विवेचना के लिए तय किए गए किसी भी मानक का पालन नहीं किया गया है। विवेचना स्पष्ट रूप से अधूरी है और ऐसा लगता है कि यह विपक्षी संख्या 2 के पद के प्रभाव में की गई है। इस आदेश की एक प्रति विवेचना अधिकारी की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में रखी जाएगी और इस आदेश की एक प्रति पुलिस महानिदेशक को भेजी जाएगी ताकि वे यह तय कर सकें कि क्या इस मामले के विवेचना अधिकारी श्री शिव कांत तिवारी को विवेचना का काम सौंपा जा सकता है या नहीं।

36. इस तरह, ऊपर बताई गई वजहों के आधार पर, यह न्यायालय बिना किसी हिचकिचाहट के यह मानता है कि पूरी प्रथम सूचना रिपोर्ट, आरोप पत्र और समन जारी करने का आदेश, आर.डब्ल्यू.ए. के सही तरीके से चुने गए सदस्यों के खिलाफ एक नाराज़ निवासी द्वारा कानून की प्रक्रिया का गलत इस्तेमाल करने के अलावा और कुछ नहीं है।

यह तर्क दिया गया था कि आर.डब्ल्यू.ए. का पंजीकरण रद्द कर दिया गया है। बाद में पंजीकरण रद्द होने के बावजूद, आवेदक आर.डब्ल्यू.ए. के सही तरीके से चुने गए सदस्य थे और उन्होंने आम समिति में पास हुए प्रस्ताव के आधार पर निर्णय लिया था। इसे किसी भी तरह से 'जबरन वसूली' नहीं कहा जा सकता, जैसा कि आरोप लगाया गया है और दावा किया गया है।

37. इसे देखते हुए, मुकदमा अपराध संख्या 392/2025 से उद्भूत वाद संख्या 115214/2025 (राज्य बनाम कमल उर्फ कमलेश अग्निहोत्री और अन्य), भारतीय न्याय संहिता की धारा 308(2), 352, 351(2) के तहत, थाना सुशांत गोल्फ सिटी, ज़िला लखनऊ में, की पूरी कार्यवाही और 25.07.2025 के आरोप पत्र संख्या 01 सन् 2025 को रद्द किया जाता है।

38. 'बड़ी शक्तियों के साथ बड़ी ज़िम्मेदारियाँ भी आती हैं'। विपक्षी संख्या 2 ने साफ़ तौर पर उन बड़ी शक्तियों के साथ ज़िम्मेदारियाँ नहीं निभाई हैं जो उन्हें मिली थीं, जैसा कि उन्होंने दावा किया था। जिस संगठन का सदस्य होने का दावा सूचनाकर्ता करता है, वह संगठन यह



देख सकता है कि क्या विपक्षी संख्या 2 के पद की वजह से आम जनता के सामने उनके सदस्यों को डराना-धमकाना सही माना जाता है। पहली नज़र में, आर एस एस जैसे बहुत अनुशासित और सम्मानित सांस्कृतिक संगठन की छवि खराब की गई है और विपक्षी संख्या 2 ने इस मामले में सदस्यता का गलत इस्तेमाल किया है; हालाँकि, यह न्यायालय विपक्षी संख्या 2 द्वारा एक सम्मानित सांस्कृतिक संगठन के नाम का जिस तरह से गलत इस्तेमाल किया गया है, उससे जुड़े कामों पर आगे कोई कार्रवाई करने के लिए पूरी तरह सक्षम नहीं है।

39. मौजूदा आवेदन ऊपर बताई गई शर्तों के साथ **स्वीकृत** किया जाता है ।

(न्यायमूर्ति पंकज भाटिया)

दिनांक - 09.02.2026

निशांत